

तंत्रयोग में निहित विभिन्न ध्यान पद्धतियों में नाद

अंकित शर्मा

शोध छात्र, योग शिक्षा विभाग

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.), भारत

Email : ankitsharmayog@gmail.com

सारांश

मानवीय सभ्यता के विकास में आज इतनी उपलब्धियों के पश्चात् भी मानव अनेकानेक मानसिक समस्याओं से निरंतर घिरता जा रहा है। कालांतर से ही इन समस्याओं के निराकरण हेतु प्रयास होते रहे हैं। यथा भारतीय संस्कृति में अनेक साधना पद्धतियों का विकास हुआ, जिनका प्रमुख उद्देश्य दुःखत्रय का उपशमन कर मोक्ष प्राप्ति करना था। इसी प्रसंग में तंत्रयोग आज एक विशिष्ट साधना पद्धति के रूप में जाना जाता है। तंत्रयोग में शैव, वैष्णव अथवा शाक्त आदि सभी मतों के द्वैत अथवा अद्वैत विचारधाराओं के सम्मिश्रण के दर्शन होते हैं तंत्रयोग में वर्णित नाद साधना एक ऐसी साधना पद्धति है, जिसमें साधक द्वारा अनाहत-नाद के श्रवण हेतु, विशेष ध्यान विधियों का प्रयोग किया जाता है। नाद साधना के प्रारम्भिक अभ्यास मात्र से ही मानसिक शांति प्राप्त की जा सकती है। आज समाज में व्याप्त अनेक मानसिक समस्याओं के निवारण के लिए इस ध्यान पद्धति का अभ्यास बहुपयोगी सिद्ध हो सकती है।

तंत्रयोग में निहित विभिन्न ध्यान पद्धतियों में नाद

विश्वभर की प्राचीनतम संस्कृतियों में सर्वप्राचीन भारतीय संस्कृति का तात्कालिक सर्वांगीण विकास सर्वमान्य है। भारत कि भूमि पर अनन्त काल से ही न जाने कितने ही विभिन्न जातियों का समागम होता रहा है। 'कम से कम ग्यारह जातियों के आगमन और समागम के प्रमाण यहाँ मिलते हैं, जिन्होंने इस देश को ही अपना देश मान लिया और जिनका एक-एक सदस्य यहाँ कि संस्कृति और समाज में भली-भाँति मिल जुलकर आर्य अथवा हिन्दू हो गया। समय समय पर नीग्रो, औष्ट्रिक, द्रविड़, आर्य, यूनानी, यूची, शक, आभीर, हूँण, मंगोल और मुसलिम आक्रमण के पूर्व आने वाले तुर्क इन सभी जातियों के लोग कई झुंडों में इस देश में आये और हिन्दू समाज में दाखिल होकर सब के सब उसके अंग हो गए। असल में हम जिसे हिन्दू संस्कृति कहते हैं, वह किसी एक जाति की देन नहीं, अपितु इन सभी जातियों की संस्कृतियों के मिश्रण का परिणाम है।' इस समग्र परम्परा के परिचय का मूल श्रोत एवं धरोहर के रूप में आज जो साहित्य हमें उपलब्ध है वह वेद, तंत्र, दर्शन, पुराण, उपनिषद आदि हैं। सत्य की अन्वेषणा के अनन्तर प्रस्तुत यह ग्रन्थ अनुभवों की कसोटी पर भरपूर कसे गए हैं, जो आज प्रमाण ग्रन्थों के रूप में हमें उपलब्ध हैं। इनमें निहित ज्ञान मानवीय चेतना के स्तर को सही मानक और दिशा

प्रदान करता है। चेतना के विकास से तात्पर्य समग्र सर्वांगीण विकास और समग्र स्वास्थ्य से है जो की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक हर स्तर से सम्बंधित है। आज विज्ञान, मनोविज्ञान सभी इस बात से सहमत हैं कि मनुष्य की चेतना का विस्तार सतत होता ही रहता है यदि हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जानें तो मानवीय मस्तिष्क का केवल दस प्रतिशत भाग ही अधिकाधिक जागृत अवस्था में रहकर सभी कार्यों को करता है और शेष मस्तिष्कीय भाग सदा निष्क्रिय/सुषुप्त अवस्था में ही रहता है। आधुनिक जगत की इतनी उपलब्धियां केवल उसी दश प्रतिशत जागृत मस्तिष्क के कारण हमें प्राप्त हैं। चिंतनीय है कि शेष सुप्त मस्तिष्कीय चेतना का यदि मानव उपयोग कर सके तो वह अपनी उपलब्धियों की सीमाओं को न जाने कितना ही बढ़ा सकता है, देवतुल्य जीवन धरा पर ही संभव हो सकता है। "विज्ञान भी यह बतलाता है कि मस्तिष्क के जो ये सुप्त केंद्र हैं उसे एक विशेष विधि के द्वारा एक साधना के माध्यम से जागृत किया जा सकता है, जिसे हमारे दर्शन और तंत्रशास्त्र में चेतना का विस्तार कहते हैं।"² इस चेतना के विस्तार हेतु साधना के विषय में "तंत्रशास्त्र में मुख्य प्रक्रिया या मुख्य साधना के रूप में योग का वर्णन किया जाता है।"³

प्रो. रामहर्ष सिंह तंत्रयोग साधना के आधुनिक प्रासंगिकता के विषय में बतलाते हैं कि 'प्रो. वैलेश तथा प्रो.वेत्सन का कार्य योग के अनुसन्धान के परिपेक्ष में सराहनीय है जिन्होंने अपने अनुसंधानों से प्रमाणित किया कि महर्षि महेश योगी द्वारा प्रचारित योग ध्यानयोग मानव के मन एवं शरीर को काफी प्रभावित करता है।'⁴ इन सभी साधकों की साधनाएं तंत्रयोग की साधनाएं ही हैं। तंत्र एवं योग को कदाचित जनसामान्य द्वारा भिन्न समझा जाता है परन्तु विद्वतजन इसे सर्वसम्मति से अभिन्न स्वीकार करते हैं; इन्हें परस्पर भिन्न समझने का एक सामान्य सा कारण योग तथा तंत्र का विस्तृत मुक्त दर्शन स्वरूप है। जिन्हे बिना स्वाध्याय के द्वारा मर्म को जाने बिना यह भ्रान्ति उत्पन्न होना स्वाभाविक है घ जैसे की अल्प ज्ञान के कारण ही योग को आज केवल शारीरिक अभ्यास तो कहीं तंत्र को केवल जादू टोना समझा जाना।

प्रो.रामहर्ष सिंह इस विषय की आलोचना में कहते हैं कि 'सम्पूर्ण भारतीय योग साधना को दो वर्गों में बांटा जा सकता है।

1—दक्षिण मार्ग।

2— वाम मार्ग।

दक्षिण मार्ग ज्ञान मार्ग का प्रतीक है जिसके प्रमुख ग्रन्थ दृ पातंजल योग दर्शन और ब्रह्मसूत्र (वेदांत दर्शन) है। वहीं दूसरी ओर वाम मार्ग क्रिया मार्ग के रूप में जाना जाता है, वाममार्गी वह होते हैं, जो कौलाचार करते हैं अर्थात 'कौल' ग्रन्थों का अनुसरण करते हैं घ इसके अतिरिक्त दोनों तरफ विशेषतः तन्त्रमार्ग में अनेक प्रकार की तत्सम साधनाएँ (cognitive practices) हैं, जो तंत्रयोग की अवधारणा को अधिक स्पष्ट करती हैं। कुछ विद्वानों के मूल्यांकन में ज्ञानयोग नकारात्मक पंथ है, जबकि तंत्रयोग अर्थात क्रियामार्ग सकारात्मक पंथ है।'⁵

तंत्रयोग (क्रियामार्ग) में व्यक्तित्व की सम्भावनाओं को अपने स्वभाविक विकास क्रम में प्रस्फुटित होने तथा अंततः समाप्त होने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। जबकी ज्ञान मार्ग में

अपने आत्यन्तिक सत्य स्वरूप को सीधे अनुभव करते हुए व्यक्तित्व को पीछे छोड़ देते हैं। दोनों सम्प्रदायों का अंतिम उद्देश्य एक ही है; भौतिकता से उपर उठ चेतना को सही दिशान्तरिक करना और बढ़ाना। परन्तु दोनों पंथ इसे अलग अलग ढंग अपनाते हैं, जहाँ एक ओर ज्ञानमार्गी उद्देश्य प्राप्ति हेतु प्रकृति को पूर्ण रूप से नकारता है, वहीं दूसरी ओर क्रियामार्गी (तंत्रयोगी) की तुलना एक बीज को अपनी संभावनाओं के अनुसार प्रस्फुटित होकर, वृक्ष बनकर अपने आपको स्वयं समाप्त कर देने में सहज सहायक होने की प्रक्रिया से की जाती है। इसीलिए इसे सर्वसाधारण साधक अथवा प्रथम कोटि के साधक भी आसानी से अपनाकर अपना मंगल कर सकते हैं।

तांत्रिक मार्ग को प्रवृत्ति मार्ग माना जाता है स्पंदन या इच्छाओं पर तब तक नियंत्रण नहीं किया जा सकता जब तक कि वे परिपक्व अथवा पूर्ण न हो जाये। अतः तंत्रयोग गृहस्थ जीवन का अनुगामी है, न कि संन्यासी हो जाने में। इसी कारण इसे प्रवृत्ति मार्ग भी कहा जाता है। गृहस्थ में इसके पालन में यह आवश्यक है कि सांसारिक मूल्यों में प्रवृत्ति अनासक्ति भाव से होनी चाहिए। इसी विषय को इंगित कर 'आद्यगुरु शंकराचार्य जी' चर्पट स्तोत्र में कहते हैं—

योगरतो वा भोगरतो वा संगरतो व संगविहीनः।

यस्य ब्रह्मणी रमते चित्तं नन्दति नन्दति नन्दत्येव ॥⁶

तात्पर्य यही है कि भोग अर्थात् गृहस्थ में होकर भी यदि चित्त सदा एकाग्र होकर ब्रह्म में रमण करता है तो वह साधक सदा प्रसन्नचित्त रहता है।

कुंडलिनी योग की साधना सर्वोपरी और सर्वश्रेष्ठ है। इसकी श्रेष्ठता इस बात में निहित है कि इसमें तंत्र के साधना पक्ष के अतिरिक्त आध्यात्मिक पक्ष, दार्शनिक पक्ष और यौगिक पक्ष का अद्भुत समन्वय है। 'योग परमज्ञान है तो 'तंत्र' गुह्यज्ञान प्राण ओर आत्मा के बीच में मन है। इसे क्रियात्मक मनोविज्ञान भी कहा जाता है। 'सभी प्रकार की मानसिक बाधाओं को हटाकर मन को पूर्णतया स्वस्थ और संयमी बनाना इसका उद्देश्य है। इसके अभ्यास का अभिप्राय यह है कि इच्छा शक्ति को जगाना तथा उसे जगाकर बलवान बनाना।'⁸ "राजयोग की विशेषताओं के कारण ही ग्रीक देश के पाइथागोरस तथा प्लेटो जैसे प्राचीन तत्ववेत्ताओं ने इसकी प्रशंसा की है"।⁹

"यह बता देना आवश्यक है कि राजयोग का अभ्यास रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय की साधुसन्ध्यासिन भी करती थीं। स्पिनोजा, कांट, शोपेनहार, एमर्सन आदि दार्शनिकों ने भी राजयोग की प्रशंसा की है।"¹⁰

अब यहाँ तंत्रयोग परम्परा में साधना के उद्देश्य की चर्चा की यदि बात करें तो, मानव द्वारा अपने आदिम काल से ही स्वयं को जानने की यात्रा में अनेक प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए सतत प्रयास सदा से वह करता रहा है। उन्ही प्रश्नों की भी ही चर्चा शंकराचार्य भी चर्पट स्तोत्र में इस प्रकार करते हैं—

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।

कस्य त्वं कः कुत आयातः तत्त्वं चिन्तय तदिह भ्रातः ॥¹¹

अर्थात्— कौन तुम्हारी पत्नी है ? कौन तुम्हारा पुत्र है ? वस्तुतः संसार बड़ा विचित्र है । तुम किस के हो, कहाँ से आये हो ? हे भाई कभी इस बात का भी विचार करो ।

मन एक ऐसी राशी है जिसका आयाम काल के साथ बदलता रहता है । मन पहले एक आयामी राशि रहा होगा, एक आयामी राशि का तात्पर्य है एक अंश की स्वतंत्रताएँ मानव का प्राण पुराना तथा मन नया है । एक आयामी राशि को तो समझना सरल है, परन्तु दो को समझना उससे कठिन है । बहु आयामी राशि को समझने के लिये विकसित ज्ञान 'विज्ञान' की आवश्यकता होती है । काल के साथ मन के आयाम में परिवर्तन की प्रक्रिया में मानव ने आज हस्तशिल्प कौशल से विज्ञान शिल्प कौशल को विकसित किया है ।¹²'बेनसन' (2003) में हुए शोध के अनुसार यदि अमेरिका जैसे विकसित राष्ट्र की भी बात करें तो हर दस में से एक पुरुष तथा पांच में से एक महिला मानसिक समस्या से पीड़ित है ।¹³अतः आने वाली विषम परिस्थिति से जूझ रहे भविष्य का यह एक संकेत है जो मानव के अस्तित्व को ही खतरे में डाल सकता है । परन्तु यदि इसी अस्तित्व की ही खोज करने वाले प्राचीन भारतीय तत्ववेत्ताओं के किये गये अनुसंधानों को यदि गहन चिंतन से जाना जाये तो इस समस्या का भी निराकरण संभव है । जिन्होंने मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पहलुओं को जान उसके भेद—उपभेद बतलाये और उसके अनियंत्रित होने के कारणों तथा उपायों को भी स्पष्ट किया । मानसिक अस्थिरता का एक प्रमुख कारण— इन्द्रियों की चंचलता को कहा गया है 'इन्द्रियाणि चरंतीह विषयेषु स्वभावतः' । जिसकी इन्द्रियाँ उसके वश में होती हैं, बाह्य विषयों की ओर नहीं दौड़ती— उसी की बुद्धि भी स्थिर रहती हैं । यहाँ इन्द्रियों और बुद्धि के मध्य मन की सत्ता का लोप हो जाता है अर्थात् मन शांत हो जाता है परन्तु इसके विपरीत मन जिसका लक्षण ही है 'संकल्प विकल्पात्मक मनः' उलझनों में पड़ा रहता है, क्या करूँ क्या ना करूँ की अस्थिर मानसिकता में उलझा रहता है । ऐसा अस्थिर मन वाला व्यक्ति अपनी बुद्धि/विवेक को समझ पाने में भी अक्षम होता है । उसकी बुद्धि कुछ कहती है, किन्तु मन कुछ और ही करता है । विचारों और इच्छाओं में निरंतर संघर्ष चलता रहता है जिसके फलस्वरूप यक्ति दुर्बल और अशांत हो जाता है । कुछ ऐसी ही स्थिति में भगवद्गीता में अर्जुन की दिखाई पड़ती है जिसे 'अर्जुनविषादयोग' कहा गया । अर्जुन स्वयं श्रीकृष्ण से इस विषय में पूछते हैं कि 'स्थितप्रज्ञस्य का भाषा?' जिसके उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'हे पार्थ! जब मानव अपने मन में स्थित सभी कामनाओं को भालीभांति त्याग देता है और अपने आप में ही अपनी आत्मा को संतुष्ट रखता है यही स्थितप्रज्ञ का लक्षण है ।'¹⁴ प्रार्थना, जप, कीर्तन, ध्यान आदि के भोग से मन शांत किया जा सकता है ।¹⁵ मानव को आस्तिक बनाना या अन्धविश्वासी बनाना इन क्रियाओं उद्देश्य नहीं बिलकुल नहीं अपितु क्योंकि मानव की प्रवृत्ति ही ऐसी है कि उसे कष्ट या पीड़ा में एक आस्था या एक अवलंबन की जरूरत पड़ती ही है । इस बात को विश्वभर के आस्तिक अथवा नास्तिक किसी भी प्रकार के सम्प्रदाय ने अवश्य ही स्वीकारा इसी कारण उन्होंने मानव की आस्था को आलंबन के तोर किसी ना किसी प्रतीकात्मक ईश्वर या किसी व्यक्तित्व को आधार जरूर बनाया । चाहे फिर वो बुद्ध को ही अन्ततोगत्वा भगवान स्वीकार कर 'बुद्धं शरणम् गच्छामि' कहे, या जैन तीर्थकरों को 'अर्हत' कहे या फिर यीशु, मोहमद आदि कोई भी हों । कहीं ना कहीं

मानव को एक आस्था का प्रतीक जरूर मिला इसका एक ही उद्देश्य है मन की शांति। परन्तु 'इसके लिए उस तत्व के साथ सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक है जो शाश्वत, सर्वशक्तिमान तथा असीम है, आनन्द का दिव्य श्रोत हो'¹⁶ना कि जो गुणों, काल तथा दिशाओं से सिमित हैं। दार्शनिक विश्लेषण या तात्विक विवेचना इसका उद्देश्य नहीं। तंत्र शास्त्र के विषयों को चार प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है— जिन्हें 'पाद' कहा जाता है। "ज्ञान पाद" "योग पाद" "क्रिया पाद" एवं "चर्या पाद"। 'ज्ञानपाद' में तंत्र सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन किया गया है यथा उपनिषदों को वेदों का 'ज्ञान काण्ड' कहा जाता है। उसी प्रकार तंत्र के 'ज्ञानपाद' में आध्यात्मिक विचारों की, 'योगपाद' में ज्ञान का योग द्वारा कैसे प्रयोग कर अनुभव किया जाए, तीसरे 'क्रियापाद' में उपासना प्रक्रिया तथा अंतिम चौथे 'चर्यापाद' में मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक आचरण पर विचार किया गया है। इन चारों अंगों से समन्वित ग्रन्थ काफी कम मात्रा में ही प्राप्त होते हैं। अधिकांश तंत्र ग्रन्थों में क्रियापाद एवं चर्यापाद का विस्तार ही प्राप्त होता है। दरअसल यही तीन 'भाव त्रय' हैं। जिनकी पर, परापर और अपरोपासना में प्रवृत्ति होती है। भाव मन के ही धर्म हैं, "मनसि उत्पद्यते भावो मनसि हि प्रलीयते"। अर्थात् भाव मन से उपजते हैं तथा मन में ही विश्रांति पाते हैं। इस विषय में कहते हैं कि

यथेक्षुगुडमाधुर्यं रसना ज्ञायते प्रभो।

तथा भावो महादेव मनसा परिभाव्यते।¹⁷

अर्थात् जिस प्रकार गुड की मधुरता जिह्वा का विषय है, उसी प्रकार भावों को मन ही जाना जा सकता है। मन की साधना में यही तीन भाव क्रमशः फलीभूत होते हैं। साधक की यह भाव साधना 'अपर से पर' या 'स्थूल से सूक्ष्म' की ही यात्रा है। साधनारूप में तंत्र में आये योगपाद की यहाँ चर्चा ही तंत्रयोग का स्वरूप है, जिसमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक सभी प्रकार के दुखों का आत्यन्तिक समाधान निहित है। इसी कारण सदा से ही शिष्टों ने इस परम विद्या का समादर किया है, इसके अनगिनत प्रमाण मिलते हैं— ऐसी प्रसिद्धि है कि बहुतेरे देवताओं ने भी तांत्रिक साधना के प्रभाव से सिद्धि पाई थी। 'अत्यधिक मान्यता प्राप्त ग्रन्थ 'ब्रह्मयामल' तथा 'जयद्रथयामल' में ऐसे अनेक तंत्र प्रवर्तक ऋषियों के नाम प्राप्त होते हैं यथा— दधीची, उशाना, बृहस्पति, नकुलीश, सनत्कुमार, काश्यप, सनक, दुर्वासा विश्वामित्र, गौतम, संवर्त, याज्ञवल्क्य, कात्यायन, भृगु आदि।'¹⁸

प्रो. 'राधेश्याम चतुर्वेदी' श्रीसिद्धांतशिखामणि की समीक्षा में वीरशैव (एक आगम ग्रन्थ) के धर्म और दर्शन के विषय में कहते हैं कि 'गहन विचार करने पर प्रतीत होता है कि दर्शन एवं धर्म एक ही वस्तु के दो आयाम हैं। ज्ञान और क्रिया अथवा धर्म और दर्शन दोनों परस्पर पूरक हैं— 'न क्रिया रहितं ज्ञानं न ज्ञान रहिता क्रिया'। परन्तु इतना अवश्य है कि क्रिया ऋजु पथ है और दर्शन वक्र मार्ग। इनके पीछे क्रमशः इनकी स्थूलता एवं सूक्ष्मता कारण है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ना मानव का स्वभाव भी है और उसकी साधना के लिए श्रेयस्कर भी। इसीलिये ग्रहस्थाश्रम में जिन योग आदि स्थूल कृत्यों के स्थूल आचरण का नियम है, वानप्रस्थ में उन्हीं के सूक्ष्म रूप में मनन और फिर सन्यास काल में निदिध्यासन का विधान है।'¹⁹

अनेक प्रकार की साधना पद्धतियों में अब यहाँ प्रश्न साधक के लिए सरलतम, सहज और शीघ्रतम फलदायी साधना के चुनाव का आता है। जिस प्रकार पूर्व में ही साधना की आवश्यकता के कारण को समझाते हुए इन्द्रियों की स्थिरता को केंद्र बिंदु में रखा गया था, उसी को आधार बनाते हुए साधना के साधन रूपी किसी पद्धति का चुनाव वांछनीय है। जैसा की हठप्रदीपिकाकार कहते हैं कि—

इन्द्रियाणां मनोनाथो मनोनाथस्तु मारुतः ।

मारुतस्य लयोनाथः स लयोनादमाश्रितः ।²⁰

अर्थात् सभी (ज्ञानेन्द्रियों) का स्वामी मन ही है इन्द्रियां इसी को अनुसरण करती हैं तथा मन का स्वामी प्राण (वायु) है और प्राण का स्वामी लय है, क्योंकि मन की प्रकृति स्वभावतः चंचल है जिसकी परमगति लय होने में ही है।

नाद शब्द को सामान्यतः ध्वनि शब्द से ही अभिहित किया जाता है परन्तु नाद को केवल इतने संकुचित अर्थ में नहीं ग्रहण किया जा सकता है। क्योंकि सामान्य ध्वनि के तीन श्रोत हैं संयोग, विभाग एवं घर्षण²¹ जो सभी आहत आहत ध्वनियाँ कहलाती हैं लेकिन नाद अनाहत ध्वनि है जोकि एक विशिष्ट ध्वनि है इसी के श्रवण हेतु पूरा नादानुसंधान बतलाया गया है। नादयोग का अभ्यास शब्द तत्व संबंधी अतीन्द्रिय क्षमताओं को जाग्रत करने के निमित्त ही किया जाता है। सामान्य कर्ण इंद्रिय से सामान्यतः समीप अथवा दूरवर्ती स्वर ही श्रवण होते हैं, परन्तु नादयोग साधना के बल से साधक दिव्य श्रोत (दिव्य कर्ण) प्राप्त करता जिससे वह दिव्य स्वरों अर्थात् नाद का श्रवण करता है जैसे कि महर्षि पतंजलि 'योगदर्शन' में कहते हैं—

"श्रोत्राकाशयोर्सम्बन्ध संयमात् दिव्यश्रोतं"²²

पुनः एक और प्रश्न या जिज्ञासा अब यहाँ उपस्थित होती है कि आखिर सामान्य साधक द्वारा किस प्रकार उस अदृश्य व कल्पनीय प्रतीत होने वाली 'अनाहत ध्वनी' का श्रवण संभव है? "जिस प्रकार बौद्ध लोग बुद्ध, धर्म और संघ नामक त्रिरत्न स्वीकार करते हैं, वैसे ही वेदवादी तांत्रिक शिव, शक्ति और बिंदु— इन तीन रत्नों को स्वीकार करते हैं।"²³ यही त्रिरत्न— शिव, शक्ति और बिंदु इस सम्पूर्ण चराचर ब्रह्माण्ड के कारण हैं। इस प्रकार आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा भूमि के क्रमिक विकास में सर्वप्रथम आकाश तत्व की तन्मात्रा शब्द ही उसके पूर्व में था। जो अनाहत रूप में था त्रिरत्न में बिंदु की ही शब्दात्मिका वृत्ति चार प्रकार की है— जो सूक्ष्म से स्थूल कर्म में इस तरह विकसित हुयी—परा, पश्यन्ति, मध्यमा तथा वैखरी। इस नाद साधना में परा ही नाद रूप है, जिसे प्राप्त करने के लिए वैखरी जोकि सबसे स्थूल है नाद साधना का प्रथम सोपान है इसमें नाद के स्थूल स्वरूप ओंकार का वाचिक जप से प्रारम्भ कर मानसिक और फिर उपांशु जप ताप पहुंचा जाता है तत्पश्चात् मध्यमा फिर पश्यन्ति और अंत में ध्येय रूपी परा (नाद)इसी नाद की साधना पद्धति को हठप्रदीपिकाकार ने नादानुसंधान चतुर्थ पाद में भलीभांति स्पष्ट किया है।

"आरम्भश्च घटच्चैव तथा परिचय अपि च ।

निष्पत्तिः सर्वयोगेषु स्यादवस्था चतुष्टयं।।²⁴

आरम्भ अवस्था में ब्रह्म ग्रन्थि भेदन जो की अनाहत चक्र से सम्बंधित है, घटावास्था में विष्णु ग्रन्थि भेदन यह विशुद्धि चक्र संबंधित है, परिचयावस्था में प्राण महाशून्य में गमन यह आज्ञा चक्र तथा निष्पत्ति अवस्था में रुद्र ग्रन्थि भेदन यह ग्रन्थि सहस्रार चक्र से संबंधित है। इस प्रकार नाद साधना से साधक ना केवल मन को साध सकता है अपितु अपने मूल स्वभाव में पूर्णतः स्थित हो सकता है, यही आत्मस्थित जनों की परम स्थिति है।

संदर्भ

- ¹दिनकर, रामधारी सिंह; *संस्कृति के चार अध्याय*; पृ. सं. 26
- ²निरंजनानंद, स्वामी; मई अंक-3, तंत्र, *योग एवं मंत्र*; योग विद्या; पृ.सं. 38
- ³निरंजनानंद, स्वामी; मई अंक-3, तंत्र, *योग एवं मंत्र*; योग विद्या; पृ.सं. 39
- ⁴सिंह, रामहर्ष ; *योग एवं यौगिक चिकित्सा* पृ.सं. 64
- ⁵सिंह, रामहर्ष ; *योग एवं यौगिक चिकित्सा* पृ.सं. 64
- ⁶चर्पट स्तोत्र.19
- ⁷ शर्मा, अरुण कुमार; *कुंडलिनी योग*; पृ. सं 51
- ⁸ शर्मा, अरुण कुमार; *कुंडलिनी योग*; पृ. सं 83
- ⁹ शर्मा, अरुण कुमार; *कुंडलिनी योग*; पृ. सं 51
- ¹⁰ शर्मा, अरुण कुमार; *कुंडलिनी योग*; पृ. सं 38
- ¹¹चर्पट स्तोत्र. 4
- ¹²चतुर्वेदी, डॉ चन्द्रविजय; *कोहम (कोन हूँ मैं?)*; शिल्पी प्रकाशन; मीरापुर, इलाहाबाद; संस्करण-1990; पृ.सं. 3
- ¹³सिंह, स्मिता; *त्राटक और प्रणव जाप का चिंता*, अवसाद, कुंठा और आत्मिश्वास पर प्रभाव का अध्ययन; शोध प्रबंध; देव संस्कृति वि. वि. हरिद्वार, 2009; पृ. सं. 5
- ¹⁴भगवद्गीता 2/54
- ¹⁵स्वामी, सरस्वती शिवानन्द; *धारणा और ध्यान*; दा डिवाइन लाइफ ऑफ सोसाइटी प्रकाशन; टिहरी, तृतीय संस्करण; पृ.सं. 88.
- ¹⁶शास्त्री, इन्द्रचन्द्र; *ध्यान और मनोबल*; प्रकाशक- सत्यसुमन सिंघल; शक्ति नगर, दिल्ली; पृ.सं. 4
- ¹⁷ दास, स्वामी रामसुख; *कल्याण*; गीता प्रेस, गोरखपुर; शक्ति अंक; पृ.423
- ¹⁸कविराज, पं गोपीनाथ; *तांत्रिक साधना और सिद्धांत*; बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना; तृतीय संस्करण 2007; पृ.सं. 16.
- ¹⁹चतुर्वेदी, राधेश्याम; *श्रीसिद्धांतशिखामणि*; शैव भारती शोध प्रतिष्ठानम्, वाराणसी; प्रथम संस्करण 2006, पृ.सं.14.

²⁰ शर्मा श्रीराम ; *नाद ब्रह्म शब्द ब्रह्म*; जन जागरण प्रेस मथुरा; पृ.सं. **1.4**

²¹शास्त्री राकेश ; *तर्कसंग्रह*, पुनर्मुद्रित संस्करण 2016, प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, पृ.सं. **174**.

²² श्रीवास्तव सुरेशचन्द्र; *पातान्जलयोगदर्शनम्*; चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी; पृ.सं.**442**.

²³कविराज, पं गोपीनाथ; तांत्रिक साधना और सिद्धांत; बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना; तृतीय संस्करण 2007; पृ.सं. **147**.

²⁴हठ.प्रदीपिका; 4 / 69.